हुसैन और इन्सानियत

हुसैनी कारनामे पर यादगार तक़रीर

उमदतुल उलमा आयतुल्लाह सै० कल्बे हुसैन साहब क़िब्ला

इस जलसे के बरपा करने वाले और इस बज़्म के बानी इस शाही बारादरी में हाज़िरीन को बुलाने वाले, आख़िरी ताजदारे अवध के इस हुसैनी अज़ाख़ाने में हुसैन[अ०] के ज़िक्र का फ़र्श बिछाने वाले न सिर्फ़ शिया हैं, न सिर्फ़ मुसलमान न सिर्फ़ वही लोग हैं जो सियासियात से अलग, और न सिफ़ वह तबक़ा है जो मुल्की मामलों की रूह, न सिर्फ़ दुनिया वाले, न सिर्फ़ दीन के बन्दे न सिर्फ़ दौलतमन्द, न फ़क़्र व फ़ाक़ा में बसर करने वाले, न ऐसे लोगों ने यह जलसा मुनअक़िद किया है जो इन्फ़ेरादियत के पैरो और न सिर्फ़ वैसे ही लोग बानी हैं जो जमहूरियत को मानने वाले बल्कि जब आप दावतनामे पर दस्तख़त करने वालों के नाम मालूम करेंगे और अपने मेज़बानों की फेहरिस्त पर ग़ौर करेंगे तो आपको मालूम होगा कि शिया-सुन्नी, हिन्दू-मुसलमान, आर्य, ईसाई, सिख, क़ादयानी, अछूत, सछूत, मुल्की, क़ौमी, सियासी, ग़ैर सियासी, मालदार-मुफ़्लिस, सरमायादार और कम्युनिस्ट शख़सियत के हामी और जमहूरियत के पैरो, हर मिल्लत, हर दिमाग़, हर ख़याल हर जज़्बे के लोग जल्से की दावत देने और इश्तेहार पर दस्तख़त करने में शामिल हैं जिसके माने यह हुए कि तमाम हज़रात इस जलसे के बानी हैं सब ही आपके मेज़बान हैं और शायद मेरा यह कहना ग़लत न होगा कि सबका हुक्म यह है कि मैं अपना परागन्दा बयान, अपने बे हक़ीक़त मालूमात, अपने सही या ग़लत जज़्बात, जलसे में मौजूद लोगों के सामने पेश करूँ इस हालत में मेरा फ़र्ज़ है और मुझ पर वाजिब है कि अगर मैं बलाग़त की राहें गुज़ारना चाहता हूँ और तमाम दावत देने वालों और बुलाने वालों को ख़ुश करना चाहता हूँ तो अपना कलाम उन अलफ़ाज़ में पेश न करूँ जो कोई समझे और कोई न समझे। किसी की मर्ज़ी के मुताबिक़ हो और किसी की मर्ज़ी के मुताबिक़ न हो। किसी के मज़हबी जज़्बात के मुवाफ़िक़ हों किसी के मज़हबी ख़यालात के मुख़ालिफ़ हों बल्कि महल का लिहाज़ करते हुए मुनासिब मौक़े की तलाश करते हुए अपनी तक़रीर का मौज़ू, अपने बयान का सरमाया वह चीज़ क़रार दूँ जो तमाम अलग-अलग ख़याल वाले, तमाम अलग-अलग मज़ाहिब पर चलने वालों और हर क़ौम हर मज़हब और हर मिल्लत की पैरवी करने वालों के लिए बिल्कुल एक तरह और बराबर की हैसियत से दिलचस्प और मुफ़ीद हो। मुझ को यह रास्ता बेहद कठिन हो जाता, मैं इस राह पर क़दम ही न रख सकता। अगर मेरी निगाहों के सामने हुसैन[अ०] के अलावा कोई और ज़ात होती और किसी और बशर की यादगार मनाने को जल्सा तलब किया गया होता। मगर मज़लूम हुसैन[अ०]! तेरा क्या कहना। क़ुर्बानी की बेनज़ीर तसवीर! तेरी क्या तारीफ़ करूँ कि तूने कर्बला के ख़ूनी आईने में हर तसवीर दिखा दी। हर रंग भर दिया, हर नक़शा बना दिया, तूने कर्बला की वीरान ज़मीन, चटियत मैदान, काँटों भरी वादी को अपने ख़ून से सींच कर जन्नत बनाया। बाग़ लगाया, चमन बनाये, नहरें जारी कीं, अन्दाज़ सुधारे, फूल खिलाए, मगर ऐसा

बाग़ नहीं जिसमें फूल एक ही से हों। ख़ुशबू एक ही सी हो, रंग एक ही से हों। मज़े एक ही हों। परिन्दों की चहचहाहट एक ही सी हो।

नहीं। नहीं। हर फूल लगाया, हर गुल खिलाया, हर चमन सजाया, हर क्यारी बनायी हर ख़ुशबू रखी, हर महक दे दी, हर नाला बना दिया, हर नग़मा सुनाया। बल्कि यह भी नहीं कि फूल हों काँटे न हों, रंगीनी हो बेरंगी न हो, नग़मे हों नाले न हों, बहार हो ख़िज़ाँ न हो, नहरें हों बेआबी न हो, उरूज हो ज़वाल न हो, सुबह हो दोपहर न हो, झुटपुटा हो रात न हो, चाँदनी हो तारीकी न हो।

ख़ुदा की क़सम! कर्बला के चमन में सब कुछ है तो फिर मेरी भी मुश्किल हल हो गयी। दुश्वार राहें आसान हो गयीं और वह हीरा मिल ही गया जो गुदड़ी में लअ्ल भी बन सके और शाहों के ताज की कल्ग़ी भी। गौहरे शब चिराग़ भी हो आफ़ताब की किरनों में रौशनी भरने वाला भी। शख़सियत की आखों का नूर भी और जमहूरियत के दिल की ठण्डक भी मैं यह क्यों कहूँ कि हुसैन^{अ०} ने ख़ुदा की राह में कुर्बानी दी और ख़ुदा को न मानने वाले बर्बाद हो जायें। मैं यह क्यों कहूँ कि हुसैन[अ०] ने नाना का दीन बचाया कि रिसालत के न मानने वाले बिगड़ जायें। मैं यह क्यों अर्ज़ करूँ कि हुसैन[अ०] ने सरमाया परस्ती को मिटाना चाहा कि दौलतमन्द दिल में कुढ़ने लगें। जी नहीं मैं तो आपके सामने कहूँगा कि हुसैन[अ०] एक इन्सान थे और इन्सान होने की हैसियत से उनका यह फ़र्ज़ था कि इन्सानों की मदद करें, इन्सानियत की हिमायत करें, आदमी को आदमी बनाने की कोशिश करें और ग़ाफ़िल बेसमझ, जाहिल, मग़रूर, गुमराह और गुस्सेवर इन्सान को सीधा ढर्रा, सही रास्ता, राहे मुस्तक़ीम दिखा दें। और बस यही हुसैन[अ०] का नुक़त-ए-नज़र था। यही हुसैन[अ०] का ज़ाती फ़रीज़ा था। यही हुसैन[अ०] का मन्सब, उनका ओहदा, उनका महल उनको बता रहा था। और यह मैं इसलिए अर्ज़ कर रहा हूँ कि मेरी नज़र में इस्लाम और इन्सानियत, मुसलमान और इन्सान इस्लाम की तबलीग़ और इन्सान की तालीम, इस्लाम की सुन्नतें और वाजिबात और इन्सानियत की राहें और फ़राएज़ अगरचे लफ़्ज़ों के एतेबार से हुरूफ़ की हैसियत से अपने ज़ाहिरी लिबास में बिलकुल अलग-अलग दो चीज़ें हैं मगर अस्ल में हक़ीक़त में और बातिन में मानी के लेहाज़ से नतीजे की हैसियत से दोनों एक हैं। लिहाज़ा जब हुसैन[अ०] ने दुनिया को इन्सानियत सिखाई तो सब कुछ सिखा दिया और जब इन्सानियत का फ़रीज़ा अदा कर दिया तो हर फ़रीज़ा अदा कर दिया।

हाज़िरीने जलसा! मैं अपने कलाम में सिर्फ़ दावे ही दावे पर बस नहीं करना चाहता बल्कि जो कुछ कहना चाहता हूँ वह दलील के साथ, वक़्त तंग है और हुसैन[अ०] बिन अली[अ०] की ज़ात वह ज़ात है कि जब उनके दामन पर हाथ पहुँच जाए और दिल में उनकी मुहब्बत उमंड रही हो तो मुझ ऐसा तंग निगाह भी यह कहने पर तैयार हो जाता है कि दिल में एक समन्दर उमंड रहा है जो कई दिन तक बयान की वुस्अत को आख़री हदों तक पहुँचने से रोक रहा है। लेकिन बन्दिशें सख़्त हैं और कुव्वत इस बोझ के बर्दाश्त करने से इन्कार कर रही है इसलिए समन्दर को कूज़े और दरिया को क़तरे और तूलानी बयान को लफ़्ज़ों और इशारों में पेश करके अपना टूटा फूटा बयान ख़त्म करना चाहता हूँ।

सुनिये और ग़ौर से सुनिये कि जब हम माँ के पेट से बाहर आते हैं तो न हमारी आँखें काम देती हैं न कान मदद करते हैं न अक़्ल सहारा देती है, उस वक़्त हम में और एक जानवर में अगर फ़र्क़ होता है तो सिर्फ़ सूरत में हाथ पैर में, नाक नक़्शे में। लेकिन काम, हालात और सीरत के एतेबार से कोई फ़र्क़ नहीं होता। अलबत्ता धीर-धीरे हम में और जानवर में फ़र्क़ होने लगता है। आँखें हमारे अच्छे बुरे और अपने पराए की तमीज़ करती हैं कान आवाज़ों को पहचानते हैं तमाम हवासों के साथ अक़्ल भी रहबरी शुरु कर देती है और यही वक़्त होता है जब हम यह समझने लगते हैं कि यह आसमान है यह ज़मीन है यह आग है यह पानी है, यह फूल है यह काँटा है। यह चीज़ें आसमानी हैं यह माद्दी हैं, यह जमाद है पत्थर है मिट्टी है। यह बेजान है, यह पेड़ पौधे हैं, फूल है, फल है बढ़ता है घटता है, पैदा होता है, मिट जाता है। मगर फिर भी बेजान है। यह जानवर है जो

देखता है, सुनता है, खाता है, पीता है, सोता है, जागता है, चलता है, फिरता है, मुहब्बत करता है, नफ़रत करता है, मिलता है लड़ता है, अपना बचाव करता है, हमला करता है, गुस्सा करता है, बर्दाश्त करता है, राहत उठाता है, परेशानी सहता है। अपने खाने पीने की फ़िक्र करता है, अपने बच्चों की परवरिश करता है मगर इन तमाम बातों के बाद भी जानवर है। मगर— इन तमाम चीज़ों के बाद हम अपनी तरफ़ और अपनी इन्सानियत की तरफ़ नज़र करते हैं तो हम देखते हैं कि पत्थरों की तरह हम में जिस्म है माद्दा है अनासिर हैं मगर हम जमाद नहीं, पत्थर नहीं, मिट्टी नहीं। पेड़ों की तरह हम में बढ़ना है, घटना है, फूल हैं फल हैं, ख़ुश्बू है बदबू है, रंग हैं, रेशे हैं, बहार है ख़िज़ाँ है, जड़ें हैं शाखें हैं, मज़ा है बदमज़गी है। मगर इसके बाद भी हम घांस नहीं, पेड़ नहीं, फूल नहीं, पत्ती नहीं, जानवरों की तरह हम में जिस्म है, गोश्त है, हड्डियाँ हैं, पठ्ठे हैं, ख़ून है, नमी है, खाना है, पीना है, सोना है, जागना है, रहम है, गुस्सा है, सुलह है, जंग है। सब ही कुछ वही है जो एक जानवर में एक हैवान में है मगर फिर भी हम हैवान नहीं, जानवर नहीं बल्कि अच्छे ख़ासे इन्सान हैं। तो जनाबे आली! हम में वह सब कुछ है जो पत्थरों में है, तो फिर हम पत्थर क्यों नहीं और जब हम में वह सब कुछ है जो पेड़-पौधों में है तो हम पेड़ क्यों नहीं और जब हम में वह चीज़ें हैं जो जानवरों में हैं तो हम जानवर क्यों नहीं। इसका जवाब अगर हो सकता है तो सिर्फ़ यही एक जवाब कि बेशक हम जमाद होते, पत्थर होते। और यही हालत हमारी माँ के पेट में थी जब हम पानी की शक्ल में थे मगर ख़ुदा ने या फ़ितरत ने या नेचर ने हम में बढ़ने की ख़ूबी दे कर जमाद (एक हालत में रुक जाना) बाक़ी न रखा। यक़ीनन हम पेड़-पौधे होते और यही सूरत हमारी माँ के पेट में थी जब हम में रग व रेशे पैदा हो रहे थे मगर ख़ुदा ने या फितरत ने या नेचर ने हम में रूह डाल कर हिस और हरकत दे के हमें नबात बाक़ी न रखा और हमको पूरा-पूरा जानवर बना दिया। और इसी जानवर की सूरत से इसी जानवर के तरीक़े से, हैवानियत की शक्ल में हम पैदा हुए और परवरिश हुई तो अब यह ग़ौर करने की बात है कि ख़ुदा ने या फ़ितरत ने हम में अब और कौन से ऐसी ख़ूबी बढ़ाई, किस जज़ा का इज़ाफ़ा किया, क्या चीज़ ज़्यादा कर दी कि हम हैवान न रहे बल्कि इन्सान हो गये। तो कहना पड़ेगा कि नफ़्से इन्सानी, या बोलने वाली जान या अक़्ल। जो चाहे नाम रखिये मगर यही एक जुज़ था जो अगर नहीं तो इन्सान नहीं। इन्सानियत के हुक्म में नहीं। इन्सान के बर्ताव में नहीं। इन्सानों की सोसाइटी में नहीं और अगर यह जुज़ है तो इन्सान भी है इन्सानियत के हुक्म में भी है उसके साथ इन्सानियत का बर्ताव भी है। इन्सानों की जमाअ़त में है। देखिये मजनूँ, पागल, सिड़ी, सौदाई, आँख भी है, देखता भी है, कान भी है सुनता भी है, ज़बान भी है बोलता भी है, आप ही की तरह तमाम बदन के हिस्से हैं, सूरत है शक्ल है, हिलना डुलना और रुक जाना सब कुछ है मगर आप उसे इन्सान नहीं समझते बल्कि जानवर समझते हैं और हरगिज़ उस पागल के साथ वह बर्ताव नहीं करते जो इन्सानों से करते हैं। बल्कि वही सुलूक करते हैं जो जानवरों से यानी तकलीफ़ देने वाला नहीं है तो खुला रहा वरना बाँध दिया। किसी को तकलीफ़ नहीं पहुँचाता तो आज़ाद रहा वरना कटहरे में बंद कर दिया। इन्सानों की मजलिस से अलग, महफ़िल से जुदा अगर चोरी करे तो सज़ा का हक़दार नहीं जैसे जानवर किसी को मार डाले तो क़ैद का हक़दार नहीं जैसे हैवान किसी को क़त्ल कर दे तो फाँसी पर न लटकाया जाय। तो मालूम हुआ कि आप अगर उनको इन्सान समझते होते तो इन्सान का सा सुलूक करते। इन्सान की सी सज़ाएं देते इन्सानियत के काम लेते, इन्सानों की बज़्म में शरीक करते मगर जब आपने यह कुछ न किया तो आपका यह तरीक़ा पुकार उठा कि सिर्फ़ सूरत को देखकर इस पागल को जानवर कहते हुए डरते हैं झिझकते हैं लेकिन हक़ीक़त में है जानवर ही बल्कि यूँ अर्ज़ करूँ कि हमने किसी ऐसी सूरत वाले को कभी जानवर नहीं कहा इस वजह से हमारी आदत इस पागल को जानवर कहने से रोकती है लेकिन हमारा हर बर्ताव बताता है कि यह सिर्फ़ सूरत में इन्सान है मगर हक़ीक़त में जानवर है। तो मालूम हुआ कि जिस चीज़ ने इन्सान

को इन्सान बनाया वह सिर्फ़ अक़्ल है, समझ है और बोलने वाला नफ़्स है।

अब यह सवाल होता है कि यह अक़्ल यह बोलने वाला नफ़्स है क्या चीज़? इसकी अस्ल, इसकी हक़ीक़त और माहियत क्या है? तो मैं अर्ज़ करूँगा कि अगर आज तक आपकी अक़्ल में आपके दिमाग़ में किसी चीज़ की अस्ल और हक़ीक़त आ गई हो तो आप आज भी यह कोशिश करेंगे कि अक़्ल की हक़ीक़त और माहियत क्या है। लेकिन जब आज तक किसी चीज़ की अस्ल हक़ीक़त आपकी समझ में नहीं आई किसी चीज़ की माहियत आपको मालूम नहीं हुई तो अक़्ल की हक़ीक़त मालूम करने में कोशिश न करें। मेरी दरख़्वास्त को आप यूँ समझें कि दुनिया की लाखों करोरों चीज़ें आपकी निगाहों के सामने हैं। किसी को आप देख रहे हैं, किसी को सुन रहे हैं। किसी को सूँघ रहे हैं किसी को चख रहे हैं। किसी चीज़ को छू के महसूस कर रहे हैं, लेकिन जब आपसे सवाल किया जाए कि इनकी अस्ल क्या है? उनकी हक़ीक़त और माहियत क्या है तो सिर्फ़ आप ही नहीं बल्कि बड़े से बड़ा हकीम और फ़लसफ़ी भी जवाब देने से आजिज़ होगा और हर चीज़ की ख़ूबियाँ उसके असरात, ख़ास बातें और काम बयान करके ख़ामोश हो जायेगा और हक़ीक़त ज़ाहिर करने में मुकम्मल अक़्ल और ज़बरदस्त इल्मी मालूमात बिल्कुल बेहक़ीक़त हो जाएंगे। फूल की ख़ुशबू क्या है? जवाब मिलेगा कि वह हालत जिसे सूँघने की ताक़त महसूस करती है। बुलबुल का गाना क्या है? जवाब मिलेगा कि यही जिस से सुनने की ताक़त असर ले रही हो। किसी चीज़ की मिठास या कड़वापन क्या है? जवाब मिलेगा कि वह हालत जिसे चखने की ताक़त महसूस कर रही है। आग की गर्मी और बर्फ़ की सर्दी क्या है? जवाब मिलेगा कि वह कैफ़ियत जिसे जिस्म महसूस करता है। और आगे बढ़िये— अगर यह सवाल किया जायेगा कि हम और आप और यह तमाम इन्सान जो हमारे जिस्म की बनावट के हैं उनकी हक़ीक़त और माहियत क्या है तो जवाब मिलेगा कि बोलने वाले जानवर यानी वह जानवर जिसमें समझ है, इदराक है और अक़्ल है लेकिन हक़ीक़त में एहसास होना समझ होना, अक़्ल व समझदारी होना यह सारी बातें ख़ूबियों के बयान करने और सामने लाने से ज़्यादा कुछ नहीं अलबत्ता माहियत के बयान करने की जगह पर अगर कोई चीज़ मिलती है तो हैवान जिसमें यह ख़ूबियाँ हैं अब सवाल पैदा होता है कि हैवान क्या है? तो बस एक जवाब है कि वह जिस्म जिसमें बढ़ना और घटना है ही, एहसास है, समझ है, इरादे की हरकत है, सुनने और देखने की ताक़त है लेकिन यह सभी चीज़ें ख़ूबियों में हैं। एहसास होना या न होना, सुनने व देखने की ताक़त होना या न होना यह सब जिस्म की ख़ूबियाँ है और माहियत और हक़ीक़त में सिर्फ़ जिस्म ही जिस्म नज़र आता है इसलिए सवाल होगा कि जिस्म की हक़ीक़त क्या है? तो जवाब मिलेगा कि जिस्म वह जौहर है, वह माद्दा है जिसमें लम्बाई चौड़ाई और गहराई पाई जाए और जो किसी जगह के बिना नहीं हो सकता। लेकिन गहरी नज़र बताती है कि यह सब चीज़ें सिफ़ात में हैं और हक़ीक़त में सिर्फ़ माद्दा रह जाता है लेकिन जब सवाल किया जाए कि माद्दा क्या है तो सभी पिछले हकीम और मौजूदा फ़लसफ़े के आलिम सिर्फ़ यही जवाब देते हैं कि माद्दा या ऐथल या माद्दी के पहले हिस्से, या ऐटम, या ज़र्रे वह छोटे-छोटे ज़र्रे हैं जो सारी दुनिया में फैले हुए हैं। अपनी सख़्ती और कमी की वजह से न किसी आले से कट सकते हैं न किसी चोट से टूट सकते हैं न किसी बाहरी या अक़्ली तक़सीम को क़बूल कर सकते हैं वह अज़ली हैं अब्दी हैं उनमें जज़्ब करने और दूर करने दोनों की ताक़त मौजूद है।

यह तमाम बहसें अपनी-अपनी जगह पर सही हैं और मेरे मौज़ू से अलग हैं कि कोई ऐसा ज़र्रा मुमकिन भी है या नहीं जो अक़्ली तक़सीम को भी क़ुबूल न करता होता। और अगर अक़्ली तक़सीम के क़ाबिल नहीं तो वह जिस्म है या नहीं। और ग़ैर मुजस्सम होने की सूरत में ऐसे हिस्सों से जिस्म की बनावट मुश्किल है और फिर अगर माद्दे में एहसास की ताक़त नहीं तो एहसास पैदा कैसे हुआ। और अगर एक ही तरह का है तो असर और नतीजे अलग-अलग क्योंकर हुए। और अगर अलग-अलग तरह के हैं तो एक से

ज़्यादा कैसे पुराने हैं? क्योंकि एक से ज़्यादा होंगे तो अपने आप एक साथ होने और एक जैसा होने की वजह से दो हिस्से मानना लाज़मी होगा और जब दो हिस्सों से मिलना हुआ तो पुराना न होगा और अपने आप से न होगा।

यह तमाम बहसें बहुत लम्बी हैं, अगर मैं इन्हीं बहसों में उलझ जाऊँ तो जो कुछ अर्ज़ करना चाहता हूँ वह मुकम्मल न रहेगा। इसलिए मैं इस वक़्त सिर्फ़ इतना ही कहना चाहता हूँ कि जब माद्दा या ऐथर या आलम की पहले हिस्से की तहक़ीक़ की जाए तो हर हकीम और फ़लसफ़ी इशारे और ज़मीर यानी लफ़्ज़ वह से अपनी बात की शुरुआत करता है। और बयाने सिफ़ातो ख़वास माद्दा शुरु कर देता है। इससे आगे इन्सानी मालूमात और उसी के साथ ही साथ बोलने की ताक़त ख़त्म हो जाती है जो साबित कर रहा है कि इन्सानी मालूमात की हद सिर्फ़ ख़ूबियाँ और ख़ास असर और कामों तक ही महदूद हैं। इसी इन्सानी समझ की कमज़ोरी को देखते हुए सभी नबियों और रसूलों बल्कि खुद सारी आसमानी किताबों ने ख़ुदा की पहचान में बयान ख़ूबियों और कामों पर ख़त्म किया और उन्हीं ख़ूबियों के रास्तों और कामों के रास्तों से इन्सान को ख़ालिक़ की पहचान तक बुलन्द किया और बता दिया कि ख़ालिक़ की हक़ीक़त इन्सानी अक़्ल की पहुँच से उसी तरह बुलन्द हैं जिस तरह दुनिया की हर चीज़ अपनी हक़ीक़त के एतेबार से हमारी समझ में नहीं आती। बहुत मुमकिन है कि मेरी इस तमहीद को ऐनियते ज़ात और सिफ़ात का सुबूत क़रार दिया जाए मगर यह भी इल्मे कलाम की एक ज़बरदस्त बहस है जिसके तै करने की यह जगह नहीं। इस तमहीद से मेरी ग़रज़ यह थी कि जिस तरह किसी चीज़ की हक़ीक़त इन्सानी ज़हन में नहीं आती उसी तरह यह मसला भी हमारे तै करने के क़ाबिल नहीं कि वह हिस्सा जिसने हैवान को इन्सान बना दिया यानी अक़्ल, समझ और बोलने की ताक़त हक़ीक़त और माहियत में क्या है। अगर हम इस हिस्से को पहचान सकते हैं तो सिर्फ़ उसकी ख़ूबियाँ काम और असर को देख कर बल्कि अगर किसी इन्सान से कोई काम, कोई बात ज़ाहिर न हो तो हम यह भी नहीं समझ सकते कि उस इन्सान में बोलने की ताक़त है भी या नहीं। इसलिए ज़रूरी है कि हम इन्सानी कामों की तहक़ीक़ करें और यह देखें कि कौन-कौन से काम बोलने की ताक़त और इन्सान की अक़्ल के साथ ख़ास हैं और कौन से काम जमाद, नबात, हैवान और इन्सान में एक हैं?

इस सवाल के हल करने में मवालीदे सलासा यानी जमाद, पेड़-पौधों और हैवानों की उन छुपी ताक़तों पर नज़र करना ज़रूरी है जो उनमें से हर एक में होती हैं। दुनिया में कोई इससे इन्कार नहीं कर सकता कि ख़ुदा ने या फ़ितरत ने या नेचर ने जो चीज़ भी पैदा की उसमें कोई न कोई रूह ज़रूर पैदा की जिसको जान भी कहा जा सकता है और क़ुव्वत या नेचर से भी इस रूह को समझा जा सकता है हम को इन रूहों या क़ुव्वतों की न हक़ीक़त मालूम है न माहियत और न हम यही मालूम कर सकते थे कि किस चीज़ में कौन सी रूह काम कर रही है। लेकिन सिर्फ़ आसार और कामों ने हमको बताया कि हर उस जिस्म में जो बढ़ता घटता नहीं अपनी एक हालत पर क़ायम रहता है जैसे संगे ख़ारा, संगे मरमर, हीरा, याक़ूत, सोना, चाँदी वग़ैरा इन सब में एक इन्तिज़ामिया क़ुव्वत जिसका नाम है रूह जमादी ज़रूर मौजूद है जिसका काम यह है कि अपनी क़ुव्वत जज़्ब करने और दूर करने की ताक़त से इस जिस्म के हर हिस्से को अपने महल पर बाक़ी रखे और ख़ालिक़ या फ़ितरत की दी हुई शक्ल को किसी क़हरी सूरत की दख़्ल अन्दाज़ी के अलावा उसकी अस्ली हैसियत पर क़ायम रखे। लेकिन नबात में यानी पेड़, शाख़, पत्ती, फूल और फल में दो रूहें मौजूद हैं। एक वही रूह जो जमादात में है जिसका काम यह है कि वह तमाम हिस्सों को अलग नहीं होने दे और दूसरी वह रूह जो उस जिस्म को बढ़ाती है उसमें बढ़ोत्तरी करती है। पैदाइश और नस्ल बढ़ाना यानी एक से एक पेड़ पैदा करने की ताक़त देती है। यह उसी नबाती रूह का काम है कि जब कोई छोटा सा बीज ज़मीन में डाल दिया जाता है और पानी की तरी रूह बनाती है छेड़ करती है तो वह बीज बढ़ता है फैलता है और एक ज़बरदस्त पेड़ बन कर सामने आता

है। उस पेड़ में डालियाँ पैदा होती हैं, फूल खिलते हैं, फल आते हैं और फल से बिल्कुल वैसे ही सैकड़ों दाने और बीज पैदा हो जाते हैं जब बीज ज़मीन में डाला गया था। अब अगर इन तमाम बीजों को ज़मीन में डाल दिया जाए तो पहले पेड़ की तरह सैकड़ों पेड़ और पैदा हो जायेंगे और यही है बढ़ना और पैदाइश।

नबातात के बाद हैवान का दरजा है इसलिए जब हम हैवान के हालात और कामों पर नज़र करते हैं तो हमारी अक़्ल बताती है कि इसमें तीन ताक़तें काम कर रही हैं एक वह जो उसके जिस्म को बाक़ी रखती है दूसरे वह जो हैवान में बढ़ोत्तरी और नस्ल की पैदावार बढ़ाने की क़ुव्वत देती है, तीसरी वह रूह जो जानवर में एहसास और इरादे की हरकत, सुन्ने, देखने और समझने की ताक़त पैदा करती है। और इस रूह के साथ दो जानें या दो ताक़तें इन्सान में पैदा होती हैं एक नफ़्से सबअ़ी जिसका तर्जुमा ताक़त व ग़ज़ब और गुस्सा करना ठीक नहीं है। दूसरे नफ़्से बहीमी जिसके माने चाहतें और जज़्बात ही कहे जा सकते हैं। नफ़्से सबअ़ी से इन्सान में ग़ज़ब और गुस्सा और मिज़ाज के ख़िलाफ़ चीज़ों को दूर करने की ताक़त, दुश्मन से मुक़ाबला करने की ताक़त, सरबलन्दी हुकूमत, सरदारी और बड़ाई हासिल करने के जज़्बात पैदा होते हैं और नफ़्से बहीमी से खाने पीने, सोने जागने, पैदाइश और नस्ल बढ़ाने, मज़ा और राहत, बनाव सिंगार, आराम और आसानी की चाहतें हादिस होती हैं।

हैवान के बाद इन्सान की मन्ज़िल है। इसलिए जब हम इन्सानी हालात पर तहक़ीक़ी नज़र डालेंगे तो हमको मालूम होगा कि उसमें वह सारी रूहें यानी जमादी, नबाती, हैवानी, नफ़्से सबअ़ी, नफ़्से बहीमी मौजूद हैं और यह तमाम ताक़तें इन्सान में काम कर रही हैं और हर ताक़त के असर और काम इन्सान से ज़ाहिर हो रहे हैं। इसलिए अगर हम ने यह मान लिया कि इन्सानों के काम सिर्फ़ ऐसे ही असरात पर टिके हैं जो हैवानों में मौजूद हैं और उनसे अलग कोई काम या असर इन्सान से ज़ाहिर नहीं होता तो इन्सान और हैवान में फ़र्क़ करना नामुमकिन होगा हाँ अगर इन्सान में जमाद, नबात और हैवान से अलग भी कुछ काम और असर मौजूद हैं तो यह कहना ठीक न होगा कि उसमें कोई चौथी रूह या नफ़्स या ताक़त मौजूद है जो न जमाद में है न नबात में है न हैवान में है। इसी का नाम है इन्सानी नफ़्स या इन्सानी रूह या अक़्ल या बोलने की ताक़त या मलकी क़ुव्वत।

इस जगह पहुँचने के बाद तहक़ीक़ में आख़िरी बात सिर्फ़ यही रह जाती है कि हम इन्सान के तमाम कामों पर गहरी नज़र डालें और यह देखें कि कौन-कौन से काम वह हैं जो हैवान और इन्सान दोनों में एक हैं और कौन-कौन से काम वह हैं जो इन्सान के साथ ख़ास हैं। इस नज़रिये से इन्सानी कामों की जाँच करने में हम को कहना पड़ेगा कि जिस्म की हिफ़ाज़त और उसको बाक़ी रखने के रास्ते जिस्मानी ताक़तों में देखना, सुन्ना, एहसास करना, हरकत करना, सूँघना और चखना, सोना और जागना, खाना और पीना, पैदाइश और नस्ल बढ़ाना, हुकूमत करना, दुश्मन से मुक़ाबला करना, मिज़ाज के ख़िलाफ़ चीज़ों का दूर करना, मुहब्बत और नफ़रत, जिस्म और उसकी तमाम ताक़तों में ज़्यादती और कमी, औलाद की तरबियत और परवरिश, दुश्मन से बचने की कोशिशें, जुज़ियात का समझना, रोज़ी तलाश करने की कोशिश करना बल्कि कुछ तरह की कारीगरी और फ़न, मुख़्तलिफ़ दवाओं और तदबीरों से इलाज और मुआलेजा वग़ैरा-वग़ैरा सारे के सारे हैवानात में मौजूद हैं। बल्कि कुछ जानवर तालीम हासिल करने के बाद हमारी ही तरह बोल भी लेते हैं और हमारे अहकाम की इताअत भी करते हैं। इसलिए यह सभी काम इन्सानियत से ख़ास नहीं हैं यह या इन से मिलते जुलते हुए सारे काम जानवरों में मौजूद हैं इसलिए मानना पड़ेगा कि इनमें से कोई एक काम भी इस हिस्से का असर और फल नहीं जिसने इन्सान को हैवान से मुमताज़ कर दिया। अलबत्ता इल्म और हिकमत यानी इन्सानी ताक़त और क़ुदरत से चीज़ों की हक़ीक़त को मालूम करना, नज़री हिकमत की मन्ज़िलों से गुज़रना, बाज़ को देखकर कुल्लियात को समझना, देखने की मन्ज़िलों से बुलन्द होकर ख़यालों तक पहुँचना और सही नतीजे निकालना, याद रखना और

फ़िक्र करना, तमाम जमादी, नबाती, और हैवानी रूहों की ज़रूरतों और जज़्बों, ख़्वाहिशों को क़ाबू में रखना और कई तदबीरों के साथ मौक़ा और महल का लेहाज़ करते हुए हर ताक़त से काम लेना। बस यही वह काम है जो अक़्ल और बोलने की ताक़त से ख़ास हैं।

चीज़ों की हक़ीक़त की तहक़ीक़ और जुज़ियात से कुल्लियात तक पहुँचने ही का सही नतीजा है ख़ालिक़ की पहचान और उसकी इताअत के जज़्बे और शौक़। जिसको दूसरी लफ़्ज़ों में यूँ समझाया जा सकता है कि अपने मालिक को पहचानना और उसकी इताअत करना ही वह काम हैं जो हैवान में नहीं बल्कि इन्सान से ख़ास हैं। लेकिन कहा जा सकता है कि जानवर भी जिसके हाथ से रिज़्क़ पाता है जो उसकी तरबियत करता है, पालता है, उसकी इताअ़त करता है अपने मालिक को ख़ूब पहचानता है। यह काम भी इन्सान से ख़ास नहीं लेकिन फ़र्क़ यह है कि हैवान सिर्फ़ उस मालिक को पहचानता है जिसके हाथ से रिज़्क़ पाता है। ज़ाहिर बज़ाहिर जानवर की तरबियत और परवरिश करता है और वह जानवर बराबर उस मालिक को देखता रहता है लेकिन इन्सान उस मालिक को पहचानता है उस ख़ालिक़ पर ईमान और इख़्तियार करता है जो इन्सान की तरबियत करता है, पैदा करता है, रोज़ी देता है। मगर इन्सान ने उसको कभी नहीं देखा, कभी उस पर नज़र नहीं की, देखा है ज़रियों को वास्तों को और पहचानता है मालिके हक़ीक़ी और ख़ालिक़े असली को। इसलिए अगर इन्सान भी अपने हक़ीक़ी मालिक और नेमतें देने वाले वली को पहचानने में देखने का मोहताज हो तो उस इन्सान और हैवान में कोई फ़र्क़ नहीं। अलबत्ता इन्सान वह है जो देखने का मोहताज न हो। इसलिए ईमान में ग़ैबत की शर्त है ताकि इन्सानियत मुमताज़ रहे और अपने पहचनवाने के वास्ते ख़ुदा उसका मोहताज न हो कि उसका कोई औतार हो या किसी में जन्म ले या किसी जिस्म के अन्दर ज़ाहिर हो। और न वह अपने काम और ताक़त दिखाने में किसी जिस्म का मोहताज है बल्कि किसी जिस्म के अन्दर आना या जन्म लेना उसको मादूम, मोहताज, बाटने वाला, बदलाव से असर लेने वाला बनाकर ग़ैर क़दीम और हादिस बना देगा।

मेरे इस बयान से साफ़ हो गया कि ख़ुदा की सही पहचान और उसकी इताअत का शौक़ जिसका दूसरा मतलब इबादत निकाला जाता है नफ़्से नातिक़ा और अक़्ल ही की वजह से है। यही वह ताक़त है जो इन्सान को ग़ौर और फ़िक्र और फ़लसफ़ियाना तहक़ीक़ात, दरयाफ़्त शुरुआत और आख़िर पर लाती है और चूँकि पैदा करने वाले का वजूद उसकी वह्दत, बराबरी, इल्म और क़ुदरत वग़ैरा हक़ीक़तों में दाख़िल हैं और सही ग़ौर और फ़िक्र का नतीजा वाक़िआत ही हुआ करते हैं। इसलिए अक़्ल ही उन तमाम ईमानी अरकान तक रहबरी करती है। जिसके बाद वह मुहब्बत के जज़्बे ख़ालिक़ और पैदा करने वाले की रिज़ा और ग़ज़ब की तलाश पर माएल करती है जिसके नतीजे में इन्सान का हर हर काम एक ऐसे दस्तूर को मानने वाला हो जाता जो इस अमल को ख़ुदा का पसन्दीदा बना दे।

दूसरा काम जो इन्सान से ख़ास है वह हर ताक़त का उसकी जगह पर होना है अगर इन्सान भी जानवर की तरह अपने जज़्बों और चाहतों से मजबूर होकर काम करता रहे तो ऐसे इन्सान में और जानवर में कोई फ़र्क़ नहीं लेकिन इन्सान सिर्फ़ वही होगा जो हर जज़्बे और चाहत के पैदा होने का जगह देखने के बाद उन से काम ले। और जगह और मौक़े को तै करना कभी वक़्ती और ज़ाती या मुल्की और क़ौमी नुक़सान और फ़ायदे से किया जाना है और कभी सिर्फ़ शरीअत की निगाह से किया जाता है। लेकिन ख़ालिक़ को पहचान लेने के बाद उसकी ख़ुशी और तक़र्रुब की रिआयत तमाम मुल्की फ़ायदों या ज़ाती और क़ौमी फ़ायदों से यक़ीनन अफ़ज़ल व बेहतर बल्कि सब से आगे है इसलिए इन्सान सिर्फ़ वही है जिसकी अक़्ल, रूह नबाती, जमादी, हैवानी नफ़्से सबई और बहीमी की इताअत में काम न करे बल्कि यह तीनों रूहें और दोनों नफ़्स जब कोई जज़्बा या ख़्वाहिश अक़्ल के सामने लायें तो अक़्ल उस जज़्बे और ख़्वाहिश की जगह, नफ़ा और नुक़सान, ख़ुदा की रिज़ा और ग़ज़ब का लेहाज़ करके इन तीनों रूहों से काम ले। यही है

बिल्कुल इन्सानियत जिसकी बड़ी से बड़ी तालीम हुसैन इब्ने अली[अ०] ने कर्बला के मैदान में इस तरह पूरी कर दी कि आज तेरह सौ बरस गुज़रने के बाद भी दुनिया इस तालीम से असर लेने में लगी हुई है।

अगर इन्सान का काम यह है कि वह हर चीज़ की हक़ीक़त मालूम करे और हमेशा सही नतीजा निकाले तो हुसैन इब्ने अली[अ०] की कुछ ज़िन्दगी की दास्तान और आपकी ज़िन्दगी का हर अमल इसका खुला हुआ सुबूत है कि आपकी क़ुव्वते नज़र कितनी बलन्द थी कि आपके हर काम का नतीजा हमेशा समझा बूझा और हर समझदार के नज़दीक बिल्कुल सही सामने आया। भाई की ज़िन्दगी और उनके इन्तेक़ाल के बाद तक़रीबन दस साल तक पूरी तरह ख़ामोशी और अमीरे शाम के ज़ुल्म और ज़्यादती पर सिर्फ़ एहतेजाज कर देने पर बस। मुआविया की ज़िन्दगी में ही यज़ीद की बैअत से इन्कार और उनके मरने के बाद इसी इन्कार पर जमे रहना, मदीना छोड़कर मक्के में क़याम और कूफ़े वालों के इसरार और यज़ीद की तरफ़ से हाजियों के लिबास में ऐसे लोगों के आने के बाद जिनको हिदायत की गई कि जहाँ हुसैन[अ०] को पायें क़त्ल कर दें ख़ान-ए-काबा की हुरमत का लेहाज़ और अपनी शहादत को अहमियत देने के लिए मक्के से कूफ़े की तरफ़ सफ़र करना, हुर के साथ अच्छा बर्ताव और ताक़त होने के बाद भी हुर से जंग की शुरुआत न करना। कर्बला में आने से पहले और इस वीरान ज़मीन पर पहुँचने के बाद कमज़ोर और दुनिया की चाहत रखने वाले लोगों को जो रास्ते में साथ आ गये थे समझा बुझा कर और सही हालात बता-बता के अपने साथ से अलग कर देना हर सूरत से दलील पूरी करने और अपनी हक़ीक़त, मज़लूमी और दयानतदारी का सुबूत पेश करके दिफ़ाअी सूरत से जेहाद शुरु करना, लश्कर की तरबियत, मोर्चों को तै करना, बहरहाल कोई एक काम भी हुसैन इब्ने अली[अ०] का ऐसा न था जिसमें हुसैन[अ०] ने किसी तरह की ग़लती की हो या धोखा खाया हो या कोई बुरा तरीक़ा इख़्तियार किया हो।

जाहिलों के दिल में शक पैदा हुआ कि अली असग़र[अ०] से कमसिन बच्चे को मैदान में लाने की क्या वजह थी लेकिन आज जबकि तमाम दुनिया के समझदार हुसैनी शहादत पर तक़रीर और तहरीर के ज़रिये रौशनी डाल रहे हैं तो दुनिया देख रही है कि हर ग़ैर मुस्लिम की ज़बान पर सबसे ज़्यादा उसी दूध पीते का ज़िक्र और उसी बच्चे का नाम आ रहा है जो इसकी दलील है कि जिस तरह आपने इस बच्चे को अपने ख़ज़ाने का आख़िरी मोती समझकर पेश किया था अस्ल में सारी दुनिया ने भी इसी बच्चे को हुसैनी क़ुर्बानी की सबसे बड़ी मन्ज़िल क़बूल कर लिया।

उस वक़्त यही सवाल हुए और आज भी एतेराज़ हो सकता है कि कर्बला के मैदान में छोटे-छोटे बच्चों और औरतों के साथ लाने की ग़रज़ क्या थी?

लेकिन जिस तरह रसूल[स०] के इस नवासे का हर काम ज़ाहिरी एतेबार से कितना ही ताज्जुब वाला क्यों न हो लेकिन नतीजे के लेहाज़ से फ़ायदेमन्द साबित होके रहा इसी तरह अहले हरम का साथ होना भी शहादत के फ़ायदों के पूरे होने के लिए लाज़मी हिस्सा था।

अगर इमाम हुसैन[अ०] के साथ सिर्फ़ जवान और जंग के क़ाबिल मर्द ही होते तो जहाँ इस मज़लूम को यह इल्ज़ाम दिया जाता कि "पहले ही लड़ाई का ख़याल दिल में ठान कर निकले थे" वहाँ एक नुक़सान यह भी था कि जब हुसैन[अ०] के सभी साथी कर्बला में क़त्ल कर दिये जाते तो शहादत के वाक़िआत को बताने वाले सिर्फ़ दुश्मन ही दुश्मन होते जिनका पहला फ़र्ज़ यह था कि सारे इल्ज़ाम हुसैन[अ०] पर रख के अपने को मजबूर और बे ख़ता साबित करें। वाक़िआत को छुपाएं, ग़लत हालात पेश करके दुनिया को धोका दें और इसी तरह हुसैनी क़ुर्बानी की सारी फ़ायदों वाली हैसियत मिट जाए। मगर यह सिर्फ़ हुसैनी क़ाफ़ले की औरतों और बच्चों ही का फ़ैज़ है कि आज दुनिया हुसैनियत की सच्ची तालीम और यज़ीदियत की हक़ीक़ी तस्वीर को जानती है।

मैं साबित कर चुका हूँ कि इन्सान की अक़्ल ही ख़ुदा की पहचान और उसकी पैरवी के जज़्बात पैदा करती है इसलिए हुसैन[अ०] इब्ने अली[अ०] ने सिर्फ़ ख़ुदा के दीन की हिफ़ाज़त की ग़रज़ से क़ुर्बानी पेश करके

ख़ुदा की पैरवी के जज़्बात की जो बेहतरीन मिसाल पेश की उसका जवाब दुनिया की तारीख़ में नामुमकिन है। फिर इसके बाद जंग के आलम में भी ख़ुदा को न भूलना उसकी इबादतों को हर वक़्त याद रखना साबित कर रहा था कि इस मज़लूम का हर काम कामिल इन्सानियत का मज़हर था और इसी इन्सानियत की तालीम के लिये इस मज़लूम ने यह सारी क़ुर्बानियाँ गवारा कर लीं।

इसमें शक नहीं कि इस मज़लूम के बहादर साथियों ने यज़ीदी लश्कर के हज़ारों ही आदमी क़त्ल कर दिये और यज़ीदी लश्कर ने भी उन बहत्तर सिपाहियों को शहीद कर डाला मगर आज दुनिया का एक समझदार भी हुसैन[अ०] को ज़ालिम और यज़ीदी लश्कर की लाशों को मज़लूम नहीं कहता बल्कि तमाम दुनिया क़ुबूल करती है कि यज़ीद वाले ज़ालिम और हुसैन और हुसैनी मज़लूम थे। जिसकी वजह सिर्फ़ यही थी कि हुसैन[अ०] वाले इन्सानियत की लड़ाई लड़ रहे थे और यज़ीद वाले हैवानियत की। हुसैनी लश्कर का हर अमल इन्सानी अक़्ल के बाद था। और यज़ीदी लश्कर का काम जानवरों के जज़्बात और हैवानों की पैरवी में था। इनकी नियत ख़ालिक़ की पैरवी थी जो बिल्कुल इन्सानियत और उनकी नियत नफ़्से अम्मारह की इताअत थी जो बिल्कुल हैवानियत, यक़ीनन इमाम हुसैन[अ०] कर्बला के ख़तरनाक मैदान में पुकार रहे थे "है कोई मदद करने वाला जो हमारी मदद करे" लेकिन इसका हक़ीक़ी मतलब सिर्फ़ यही था कि अगर दुनिया में काई इन्सान नुमा हैवान हक़ीक़त में इन्सान बन्ना चाहता हो तो मेरी तरफ़ आ जाये ताकि कामिल इन्सान बन के दुनिया में रहे और हुसैन[अ०] की यह आवाज़ अब भी दुनिया से मदद और नुसरत माँग कर इन्सानियत की दावत दे रही है और हक़ यह है कि आज भी इन्सान सिर्फ़ वही हैं जिनके क़दम हुसैनी रास्तों से अलग न हों।

यह सच है कि हुसैनी तज़किरे के इन्सानियत सिखाने वाले फ़ायदेमन्द पहलू को छोड़कर सिर्फ़ रोने-धोने पर बस करना ग़लती है मगर मज़लूमियत की दास्तान सुनकर न रोना भी कोई अच्छा रास्ता नहीं है। अइम्म-ए-मासूमीन का हुक्म है गिरया करो और ज़्यादा से ज़्यादा गिरया करो। जिसके फ़ायदे वाले पहलू बहुत ज़्यादा हैं। मगर इस जगह पर मैं सिर्फ़ इतना ही कहने पर बस करूँगा कि जो नासमझ कह बैठते हैं कि रोना रुलाना, सीना पीटना औरतों का काम है। मर्द के हाथ में तलवार और दिल में जान लुटाने के जज़्बात होने चाहियें हैं मैं भी कहता हूँ कि रोना बेशक औरतों का काम है। मर्दों पर अच्छा नहीं लगता मगर न हर रोना बल्कि वह जो अपने दर्द पर हो। अपनी चोट पर हो जैसे लकड़ी की चोट खा के चीख़ उठना, तलवार का ज़ख़्म खा के रो देना नामर्दी है और ज़रूर नामर्दी है। मगर दूसरे के दर्द दुख मुसीबत देखकर या सुन के रो देना बिल्कुल इन्सानियत है। अगर यह न हो तो इन्सान, इन्सान नहीं हमारे सामने किसी बच्चे को तकलीफ़ पहुँचाई जाए और हम देख-देख कर मुसकुराएं तो बहीमियित और हैवानियत है और अगर आँसू निकल आयें तो बिल्कुल इन्सानियत है। शरई तकलीफ़ तो अपनी जगह पर ही तै की जाती है मगर इस वक़्त तो मैं सिर्फ़ इतना ही कहता हूँ कि शियों ने हाथों से। ज़न्जीरों से तलवारों से मातम करके दिखा दिया कि जुरअत और हिम्मत और बर्दाश्त की ताक़त कितनी है मगर इसी के साथ मुसीबतों के ज़िक्र सुन के गिरया और बुका से यह साबित कर दिया कि इन्सानों से हमदर्दी दूसरों की मुसीबत में दिल का असर बल्कि इन्सानियत के हक़ीक़ी जज़्बात कितने ज़्यादा हैं।

बिल्कुल यही चीज़ थी जो कर्बला के ख़ूनी आइने में हुसैन इब्ने अली[अ०] ने गिरया और मुस्कुराहट ग़म और ख़ुशी। रोने और हंसने के मुख़तलिफ़ नक़्शों में पेश की थी। जब अहलेबैत[अ०] की मुसीबत, दोस्तों का ग़म, बच्चों का मरना, अज़ीज़ों के गहरे और दिल हिला देने वाले ज़ख़्म देखे तो रो दिये मगर जब अपनी नौबत आयी तो नेज़ों, तीरों, तलवारों, पत्थरों के सैकड़ों ज़ख़्म पड़ने के बाद भी मुसकुराते रहे।

वह थी बिल्कुल इन्सानियत और यह थी बिल्कुल बहादरी और मर्दानगी।

■■■